Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

शि॰
५९

रस छंद अलंकार

विश्वम्भर मानव

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

रस
छंद
अलंकार

•

विश्वम्भर 'मानव'

•

स्कैन्ड / Scanned

लोकभारती प्रकाशन
15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

•

द्वितीय संस्करण
१९७६

•

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य : १·५०

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

भूमिका

श्रेष्ठ काव्य का अध्ययन करते समय पाठक कभी आत्मविभोर हो उठता है, कभी अपने अंतःकरण में एक गूँजती लय का आभास पाता है, कभी चकित हो उठता है और कुल मिलाकर ऐसे आनंद की अनुभूति करता है, जो अनिर्वचनीय है। वह इतना तो जानता है कि उसका हृदय आंदोलित हो उठा है; पर उस सुख की व्याख्या वह नहीं कर सकता। वह मानता है कि उसने सौंदर्य का साक्षात्कार किया है; पर यदि उससे पूछा जाय कि इस सौंदर्य के उपादान क्या हैं, तो वह कोई उत्तर नहीं दे पाता। काव्य के क्षेत्र में सौंदर्य के इन स्रोतों और प्रसाधनों की खोज में ही मनीषियों की शताब्दियाँ बीत गयीं और उस साहित्यिक-यात्रा से जो उपलब्धियाँ हुईं, उनसे रस, अलंकार और छंद शास्त्र की रचना हुई।

इन शास्त्रों के अध्ययन से जिनका मूल आधार सौंदर्य है, पाठकों को आनंद की उपलब्धि होनी चाहिए थी और साथ ही काव्य के प्रति उनका आकर्षण भी बढ़ना चहिए था। और कुछ नहीं, तो काव्य के मर्म को समझने में ही उन्हें कुछ सहायता मिलनी चाहिए थी। पर हिंदी में ऐसा कुछ नहीं हुआ। उलटे, रस, छंद, अलंकार के अध्ययन के प्रति एक प्रकार की अरुचि उत्पन्न होती चली गयी। कारण, इन विषयों को ठीक ढंग से प्रस्तुत न करना ही लगता है।

आधुनिक युग की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें खड़ी बोली का ग्रहण हुआ है और अवधी तथा ब्रज काव्य के मंच से उतर गयी हैं; फिर भी ये इससे इतनी दूर नहीं पड़ी हैं कि इनका अध्ययन-अध्यापन ही बंद हो गया हो। नौ सौ वर्ष के इस समस्त प्राचीन काव्य को समझने के लिए संस्कृत-साहित्य-शास्त्र की थोड़ी-बहुत जानकारी अपेक्षित है। काव्य के इन अंगों में रस, छंद और अलंकार प्रमुख हैं। अंग्रेजी आलोचना पद्धति का प्रभाव उत्तर-छायावाद-काल में ही विशेष रूप से पड़ा है; अतः यह समझ बैठना कि बीसवीं शताब्दी का काव्य इन प्रभावों से

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

मुक्त होगा, भूल की बात होगी। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का बहुत सफल प्रयोग किया है, मैथिलीशरण गुप्त का मात्रिक छंदों पर असाधारण अधिकार है 'प्रसाद' और पंत ने तो प्राचीनतम आल्हा छंद को पचा लिया है, यहाँ तक कि कामायनी का प्रारंभ ही इस छंद से होता है, महादेवी का काव्य मूलतः व्यंजनात्मक है और उसमें लाक्षणिक प्रयोगों की भरमार है। इसके अतरिक्त श्रीधर पाठक से लेकर आज के नवीनतम कवि की कविता में अलंकारों का प्रयोग जान या अनजान में होता आया है। अतः यदि हम सूर और तुलसी की कला की बारीकियों को समझना और आधुनिक काव्य पर संस्कृत साहित्य शास्त्र के प्रभाव से अवगत होना चाहते हैं, तो काव्य के प्रमुख अंगों से हमें परिचित होना पड़ेगा।

हिन्दी में काव्य के अंगों पर पुस्तकों की भरमार है। उनमें दो बड़े दोष पाते जाते हैं। पहला तो यह कि अधिकतर लेखक संस्कृत के विद्वान् हैं। इन्होंने संस्कृत से काव्य के लक्षणों का ज्यों का त्यों अनुवाद करके रख दिया है। यह भाषा पुरानी, रूढ़िग्रस्त एवं पंडिताऊ है और हिन्दी की आत्मा के अनुकूल नहीं पड़ती। दूसरे, प्राचीन काव्य से जो उद्धरण दिए गए हैं, वे अस्पष्ट और दुरूह हैं; अतः सारा प्रयत्न ही बेकार हो गया है। इस लघु ग्रंथ में इन दोनों दोषों में बचने का प्रयत्न किया गया है। रस, छंद, अलंकार की सामान्य विशेषताओं के साथ, व्याख्याएँ अत्यंत स्पष्ट भाषा तथा कम से कम शब्दों में दी गयी हैं। उनके समर्थन मे प्राचीन और आधुनिक काव्य से जो उद्धरण दिए गए हैं, वे ऐसे हैं जिनसे हिन्दी का पाठक सामान्य रूप से परिचित है। विश्वास है इस ग्रंथ के माध्यम से विशाल विद्यार्थी-वर्ग और हिन्दी-प्रेमी साहित्य के अंगों से केवल परिचित ही नहीं होंगे, वरन् इनके प्रकाश में हिन्दी काव्य के सौंदर्य, माधुर्य और अर्थ से भी नए रूप में साक्षात्कार कर सकेंगे।

८८८, कल्याणीदेवी
इलाहाबाद-३

—विश्वम्भर 'मानव'

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

क्रम

(१) रस

रस	११
भाव	११
विभाव	१२
अनुभाव	१३
साधारणीकरण	१४
रसों का महत्त्व और स्थिति	१४
रसों का पारस्परिक संबंध	१६
रसात्मक उक्ति के भेद	१६
रसों के अंग और उदाहरण	१७
दो नए रस	२४

(२) छंद

छंद	२७
मात्रिक छंद चौपाई	२७
दोहा	२७
सोरठा	२८
हरिगीतिका	२८
रोला	२८
उल्लाला	२८
छप्पय	२९
वीर	२९
सरसी	३०

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

कुंडलिया	३०
बरवै	३१
राधिका	३१
रूपमाला	३१
सार	३२
पीयूषवर्ष	३२
शृंगार	३२
गीतिका	३३
वर्णिक छंद	३३
द्रुतविलंबित	३३
मालिनी	३४
मंदाक्रांता	३४
वसंतगीतिका	३४
शार्दूलविक्रीड़ित	३४
वंशस्थ	३५
शिखरिणी	३५
चंपकमाला	३६
भुजंगी	३६
तोटक	३६
प्रतिमाक्षरा	३७
पंचचामर	३७
प्रमाणिका	३७
घनाक्षरी	३८
रूप घनाक्षरी	३८
सवैया और उसके रूप	३८

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

(३) अलंकार

अलंकार	४३
शब्दालंकार अनुप्रास	४४
यमक	४५
श्लेष	४६
वक्रोक्ति	४७
अर्थालंकार उपमा	४८
रूपक	५०
प्रतीप	५१
उत्प्रेक्षा	५१
व्यतिरेक	५२
असंगति	५३
निदर्शना	५३
विभावना	५३
अतिशयोक्ति	५३
अत्युक्ति	५४
अपन्हुति	५४
अन्योक्ति	५४
दृष्टांत	५५
उदाहरण	५५
यथासंख्य या क्रम	५५
उल्लेख	५६
परिकर	५६
परिकरांकुर	५६
सहोक्ति	५७
विनोक्ति	५७
कारणमाला	५७

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

संदेह	५८
भ्रांतिमान	५८
काव्यलिङ्ग	५९
स्वभावोक्ति	५९
समासोक्ति	५९
अप्रस्तुतप्रशंसा	६०
स्मरण	६०
व्याज स्तुति	६०
व्याज निंदा	६१
विरोधाभास	६१
दीपक	६१
परिसंख्या	६२
अर्थान्तरन्यास	६२
तुल्ययोगिता	६२
विशेषोक्ति	६३
संकर	६३
संसृष्टि	६३
प्रतिवस्तूपमा	६३
मीलित	६३
उन्मीलित	६४
सद्गुण	६४
पूर्वरूप	६४

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

रस

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

रस

आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' में काव्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—वाक्यं रसात्मकम् काव्यं अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। इससे पता चलता है कि काव्य की आत्मा रस है। संक्षेप में काव्य के आस्वाद को रस कहते हैं। कविता पढ़ने और नाटक देखने से पाठक और श्रोता को जो असाधारण और अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है, वही रस कहलाता है।

रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में लिखा है—बिभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति अर्थात् विभाव, अनुभाव, और व्यभिचारी भावों के संयोग में रस की निष्पत्ति होती है।

रस के तीन अंग होते हैं—(१) भाव (२) विभाव और (३) अनुभाव।

भाव

रसों के आधार भाव हैं। भाव दो प्रकार के होते हैं—(१) स्थायी (२) संचारी।

मानव-हृदय में कुछ भाव स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। इन्हें स्थायी भाव कहते हैं। ये ६ हैं। स्थायी भाव की परिपक्व अवस्था ही रस है। अतः रस भी ६ हैं। इनके नाम ये हैं—

स्थायी भाव	रस
(१) रति	(१) शृंगार
(२) हास	(२) हास्य
(३) शोक	(३) करुण
(४) उत्साह	(४) वीर
(५) क्रोध	(५) रौद्र
(६) भय	(६) भयानक
(७) जुगुप्सा (घृणा)	(७) बीभत्स
(८) विस्मय	(८) अद्‌भुत
(९) निर्वेद (वैराग्य)	(९) शांत

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

जो भाव मन में केवल अल्प काल तक संचरण करके चले जाते हैं, वे संचारी भाव कहलाते हैं। इन्हीं का दूसरा नाम व्यभिचारी भाव है। ये स्थायी भाव को पुष्ट करने के लिए आते हैं और तुरंत लुप्त हो जाते हैं। इनकी स्थिति जल में तरंगों की भाँति समझनी चाहिए। ये लघु भाव किसी एक ही रस के साथ बँधे नहीं रहते। इसी से इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। इनकी संख्या ३३ हैं—

(१) निर्वेद (उदासीनता)	(२) आवेग	(३) दैन्य	(४) श्रम
(५) मद	(६) जड़ता	(७) उग्रता	(८) मोह
(९) शंका	(१०) चिंता	(११) ग्लानि	(१२) विषाद
(१३) व्याधि	(१४) आलस्य	(१५) अमर्ष	(१६) हर्ष
(१७) गर्व	(१८) असूया (ईर्ष्या)	(१९) धृति	(२०) मति
(२१) चापल्य	(२२) व्रीड़ा	(२३) अवहित्था (दुराव)	(२४) निद्रा
(२५) स्वप्न	(२६) विवोध (जागरण)	(२७) उन्माद	(२८) अपस्मार मिरगी)
(२९) स्मृति	(३०) औत्सुक्य	(३१) त्रास	(३२) वितर्क
(३३) मरण			

विभाव

रसों को उदित और उद्दीप्त करने वाली सामग्री विभाव कहलाती है। इसके तीन अंग हैं—(१) आश्रय (२) आलंबन और (३) उद्दीपन।

जिसके हृदय में भाव उत्पन्न होता है उसे आश्रय कहते हैं, और जिसके प्रति भाव उत्पन्न होता है उसे आलंबन कहते हैं। भावों को उद्दीप्त करने वाली वस्तुओं, पृष्ठभूमि और कार्यों को उद्दीपन की संज्ञा दी गयी है। यदि पुष्प-वाटिका में सीता को देखकर राम के हृदय में भाव उत्पन्न होता है तो यहाँ राम आश्रय, सीता आलंबन और वाटिका उद्दीपन हैं। आश्रय और आलंबन में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता। आशय यह कि राम को देखकर यदि सीता के हृदय में भाव जागरित हो, तो सीता

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

आश्रय और राम आलंबन होंगे। प्रत्येक रस के उद्दीपन विभाव पृथक् होते हैं। प्रकृति की वस्तुएँ जैसे चाँदनी, समीर, सुमन, सरिता, सरोवर, वृक्ष, लता, पर्वत, ऋतुएँ आदि तो उद्दीपन का काम करती ही हैं !

अनुभाव

अनुभाव का अर्थ होता है भाव का अनुसरण कहने वाला। अनुभाव उन शारीरिक चेष्टाओं को कहते हैं जिनसे हृदय के किसी भाव का पता चले।

ये दो प्रकार के होते हैं—(१)सात्विक भाव और (२) हाव।

जो शारीरिक चेष्टाएँ स्वाभाविक रूप से स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हें सात्विक भाव कहते हैं। ये गणना में आठ हैं—

(१) रोमांच (२) कंप (३) स्वेद (४) स्वरभंग
(५) अश्रु (६) वैवर्ण्य (७) स्तंभ (८) प्रलय (चेतना-शून्यता)

जिन चेष्टाओं के पीछे प्रयत्न छिपा रहता है, उन्हें हाव कहते हैं जैसे कटाक्षपात, हाथ से इशारे करना, कूदना, झपटना।

सात्विक भावों का संबंध आश्रय से होता है और हावों का आलंबन से।

अनुभावों के द्वारा भाव की सूचना मिलती है। विभाव भाव को अंकुरित करता है, परन्तु अनुभाव उसे आस्वाद योग्य बना देता है।

अतः आश्रय के हृदय में आलंबन को विशेष परिस्थिति में देखकर जो विशेष प्रकार का, उसे बहुत देर तक मग्न कर देने वाला, उसकी आकृति से भाव लक्षित होता है, उसकी अनुभूति का पाठक, श्रोता या दर्शक के हृदय में रस के रूप में आविर्भाव होता है।

कहा गया है कि काव्य की आत्मा रस है। रस वह है जिसके कारण मानव-हृदय द्रवीभूत हो जाता है। रस का विशेष अर्थ आनंद है। इस आनंद का सम्बंध न तो सुख से है, और न दुःख से। इसी से अत्यन्त कारुणिक कविता को पढ़ते हुए और आँसुओं के बहाव पर भी उसके

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

पढ़ने या सुनने में मन लगा रहता है। रस वस्तुतः प्रत्येक मानव-हृदय में संस्कार रूप में रहता है और उपयुक्त कारण पाकर उद्दीप्त हो जाता है।

साधारणीकरण

काव्य के पठन और नाटक के देखने से हमें जो आनंद प्राप्त होता है, वह साधारणीकरण द्वारा। इसके द्वारा व्यक्तिविशेष का भाव सामान्य व्यक्ति का भाव बनकर व्यापकता ग्रहण करता है। अतः साधारणीकरण सहृदय—पाठक या दर्शक—के भाव का होता है। जो भाव आश्रय के मन में है, कुछ-कुछ वैसा ही भाव भावुक व्यक्ति के मन में जगता है और तब हम तन्मयता का अनुभव करते हैं। इसी से हमें कविता पढ़कर या नाटक देखकर आनंद की अनुभूति होती है।

रसों का महत्त्व और स्थिति

शृङ्गार

काम के अंकुरित होने को 'शृंग' कहते हैं; इसी से प्रेम भाव से युक्त रस शृंगार कहलाता है। यह भाव सृष्टि में सबसे अधिक व्यापक है, इसी से इसे 'रसराज' भी कहा जाता है। इसके दो पक्ष हैं—संयोग और विप्रलंभ। संयोग में दर्शन, मिलन, वार्त्तालाप और स्पर्श आदि का वर्णन रहता है। विप्रलंभ वियोग को कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है—(१) पूर्वराग (२) मान और (३) प्रवास। प्रेमी-प्रेमिका की वास्तविक भेंट से पूर्व चित्र-दर्शन अथवा गुण-श्रवण से उत्पन्न प्रेम पूर्वराग कहलाता है। नायिका का रूठना मान के अन्तर्गत आता है। मिलन के उपरान्त विदेश-गमन को प्रवास कहते हैं। इसके अतिरिक्त नायक-नायिका का मिलन यदि सदा के लिए असंभव हो जाय, तो उसे 'करुण विप्रलंभ' कहेंगे।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

हास्य

हास्य के छः भेद माने जाते हैं—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित अथवा अट्टहास। नेत्रों के विकास के साथ मंद मुस्कान को स्मित कहते हैं। हसित में कुछ दाँत भी दिखलाई पड़ जाते हैं। दाँत दिखाई पड़ने के साथ मधुर शब्द भी हो, तो विहसित कहलाता है। विहसित के साथ कंधे, सिर आदि के हिलने से हास्य, अवहसित की संज्ञा ग्रहण करता है। यदि हँसते-हँसते आँखों में पानी आ जाय, तो वह अपहसित होगा और जिसमें जोर की हँसी के साथ इधर-उधर हाथ-पैर भी पटके जाँय वह अतिहसित अथवा अट्टहास कहा जायगा।

बड़े आदमियों में स्मित और हसित होते हैं, मध्यम श्रेणी के लोगों में विहसित और अवहसित तथा नीच पुरुषों में अपहसित और अतिहसित।

करुण

शोक मन को गहराई से छूता है, इसलिए कुछ विद्वानों ने करुण रस को भी बहुत महत्त्व प्रदान किया है। कवियों में भवभूति इसके व्यापक प्रभाव से परिचित थे। करुणा का समावेश विप्रलंभ श्रृंगार में भी होता है। दोनों में अंतर यह है कि वियोग श्रृंगार में प्रेमी-प्रेमिका के सदा को दूर रहने पर भी मिलने की संभावना बनी रहती है, जबकि करुण में मृत्यु होने से मिलने की आशा नष्ट हो जाती है।

वीर

रसों में श्रृंगार के उपरांत वीर की प्रधानता समझनी चाहिये। प्रबंध काव्यों में युद्ध के वर्णनों की भरमार सी पायी जाती है। लेकिन वीर रस युद्ध तक ही सीमित नहीं है, उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। वीर चार प्रकार के माने जाते हैं—(१) युद्धवीर (२) दानवीर (३) दयावीर और धर्मवीर। काव्य में युद्धवीर की ही प्रधानता है।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

रसों का पारस्परिक संबंध

कुछ रसों का आपस में विरोध है। श्रृंगार का करुण, वीर, रौद्र और भयानक के साथ। हास्य का भयानक और करुण के साथ। करुण का हास्य और श्रृंगार के साथ। वीर का भयानक और शांत के साथ। वीभत्स का श्रृंगार के साथ। शांत का वीर, रौद्र, श्रृंगार, हास्य और भयानक के साथ।

रसात्मक उक्ति के भेद

भाव और रस के अतिरिक्त रसात्मक उक्ति के और भी कई भेद होते हैं जैसे रसाभास, भावाभास, भावोदय, भाव-शांति, भाव-संधि और भाव शबलता।

अनुचित व्यक्ति के प्रति भाव का प्रदर्शन रसाभास के अंतर्गत आता है। यदि पिता और गुरु के प्रति क्रोध, गुरुपत्नी या विमाता के प्रति काम अथवा सम्मानित व्यक्तियों के प्रति हास्य का भाव प्रदर्शित किया जायगा, तो वहाँ रस न होकर 'रसाभास' होगा। यदि किसी व्यक्ति में अस्वाभाविक भाव दिखाया जायगा जैसे संत में क्रोध और वीर में कायरता, तो वह भाव न कहलाकर 'भावाभास' कहलायेगा। जहाँ किसी एक भाव के शांत होते ही दूसरे भाव का उदय हो जैसे किसी के प्रति क्रोध करने के उपरांत प्रेम का, तो उसे रस की भाषा में भावोदय कहेंगे। जब कुछ देर से चलने वाला भाव किसी कारण से एकदम शांत हो जाय जैसे किसी प्रियजन को सामने पाकर क्रोध, तो उसकी संज्ञा भाव-शांति होगी। जहाँ भावों का संचार एक साथ दिखाया जाय जैसे हर्ष और विषाद का, वहाँ भाव-संधि होती है। भाव-शबलता में एक ही साथ अनेक भावों का उदय होता है। स्मृति उमड़ने पर ऐसी स्थिति संभव होती है जैसे देव के इस कवित्त में—

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कला-निधान।
कान परी काके कहूँ सुजस कहानी-सी॥
तब ही तें 'देव' देखी देवता-सी, हँसति-सी।
रीझति-सी, खीजति-सी, रूठी-सी, रिसानी-सी॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

रसों के अंग और उदाहरण

(१) शृंगार रस

स्थायी भाव—रति या प्रेम ।

आश्रय और आलंबन—नायक-नायिका अथवा प्रेमी-प्रेमिका ।

उद्दीपन—[संयोग] रमणीय वातावरण, उपवन, चाँदनी, समीर, शरद, वसंत आदि ऋतु, एकांत स्थल, कमनीय कुंज, सखा, सखी, दूती आदि ।

[वियोग] सूनी सेज, वर्षा, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार आदि ।

अनुभाव—(क) मधुर अलाप, अवलोकन, स्पर्श, आलिंगन, कटाक्ष, रोमांच ।

(ख) अश्रु, वैवर्ण्य ।

संचारी—समस्त संचारी ।

संयोग में आलस्य, उग्रता, जुगुप्सा, मरण नहीं आते ।

संभोग या संयोग शृङ्गार—

चितवत चकित चहूँ दिसि सीता ।
कहँ गये नृप किसोर मन चीता ।।
लता ओट तब सखिन लखाये ।
स्यामल गौर किसोर सुहाये ।।
देखि रूप लोचन ललचाने ।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने ।।
अधिक सनेह देह भई भोरी ।
सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी ।।
लोचन मग रामहिं उर आनी ।
दीन्हें पलक कपाट सयानी ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

विप्रलंभ या वियोग शृङ्गार—

(१) जेहि विधि कपट कुरंग सँग,
धाइ चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर,
रटति रहति हरि नाम ।।

(२) मधुवन तुम कत रहत हरे !
विरह-वियोग स्याम-सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ?

(३) कहेउ राम वियोग तब सीता।
मो कहँ सकल भए विपरीता ।।
नूतन किसलय मनहुँ कृसानू।
काल-निसा-सम निसि, ससि भानू ।।
कुवलय-विपिन कुंत-वन सरिसा।
वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।
कहेऊ ते कछु दुख घटि होई।
काहि कहौं यह जान न कोई ।।

(२) हास्य

स्थायी भाव—हास ।

आलंबन—विलक्षण आकृति के प्राणी, हँसी जगाने वाली वस्तुएँ, विकृत वचन वाले मनुष्य ।

आश्रय—दर्शक ।

उद्दीपन—आलंबन की हास्य उत्पन्न करनेवाली चेष्टाएं, अनोखी वेश-भूषा तथा वचन ।

अनुभाव—आश्रय की हँसी, आँखों का मींचना, मुख का फैल जाना ।

संचारी—हर्ष, चपलता, उत्सुकता ।

(१) विंध्य के बासी, उदासी, तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी 'तुलसी', सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे ।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुणा करि कानन की पगु धारे।।

(२) जेहि दिसि बैठे नारद फूली।
सो दिसि तेहि न विलोकी भूली।।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।
देखि दसा हर गन मुसिकाहीं।।

(३) करुण

स्थायी भाव—शोक।

आलंबन—मृत संबंधी या बंधु, दीन व्यक्ति।

आश्रय—शोक करने वाला।

उद्दीपन—दाह कर्म, मृत व्यक्ति से संबंधित वस्तुएँ [घर, वस्त्र, आभूषण], स्मृतियाँ, उससे संबंधित बातें सुनना।

अनुभाव—भूमि-पतन, उच्छ्वास, रुदन, स्तंभ, प्रलाप, दैव या भाग्य की निंदा, बकवाद।

संचारी—ग्लानि, मोह, चिंता, विषाद, व्याधि, उन्माद, जड़ता, दैन्य।

उहाँ राम लछमनहिं निहारी।
बोले बचन मनुज अनुसारी।।
अर्ध राति गई कपि नहिं आयेउ।
राम उठाय अनुज उर लायेउ।।
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ।
बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई।
उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
बहु विधि सोचत सोच विमोचन।
स्रवत सलिल राजिव दल लोचन।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

(४) वीर

स्थायी भाव—उत्साह ।

आलंबन—शत्रु ।

आश्रय—विजयी व्यक्ति ।

उद्दीपन—शत्रु की चेष्टाएँ या कीर्ति श्रवण, सेना, रण-वाद्य, युद्ध का कोलाहल ।

अनुभाव—भुजा फड़कना, मुख पर चमक, उत्साहपूर्ण वाणी, पराक्रम का कथन, आक्रमण ।

संचारी—रोमांच, हर्ष, गर्व, औत्सुक्य ।

दबकि दबोरे एक, वारिधि में बोरे एक,
मगन मही में, एक गगन उड़ात हैं ।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि-चारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं ।

(५) रौद्र

स्थायी भाव—क्रोध ।

आलंबन—शत्रु, शोषक, अत्याचारी, अशिष्ट व्यक्ति, दुराचारी, देश-द्रोही, कपटी प्राणी ।

आश्रय—क्रोध करने वाला ।

उद्दीपन—व्यक्ति के अपराध, चेष्टाएँ, गर्वोक्तियाँ या छल ।

अनुभाव—त्यौरी चढ़ाना, आँखों का लाल होना, ओंठ चबाना, कठोर भाषण, गर्जन-तर्जन, प्रहार, कंप, आवेग, शस्त्र को चमकाना, डींग मारना ।

संचारी—अमर्ष, उग्रता, क्रूरता, गर्व, चपलता, आवेग ।

माखे लखन कुटिल भई भौहैं ।
रदपट फरकत नयन रिसौहैं ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई ।
तेहि समाज अस कहइ न कोई ।।
कही जनक जस अनुचित बानी ।
विद्यमान रघुकुल मनि जानी ।।
लखन सकोपि बचन जब बोले ।
डगमगानि महि दिग्गज डोले ।।

(६) भयानक

स्थायी भाव—भय ।
आलंबन—भयप्रद वस्तु [सिंह, जंगल की आग, सुनसान स्थान], डाकू, बलवान शत्रु ।
आश्रय—भयभीत व्यक्ति ।
उद्दीपन—भयंकर दृश्य, चेष्टाएँ, लपटें, सन्नाटा, डरावना स्वर ।
अनुभाव—कंप, स्वेद, रोमांच, वैवर्ण्य, पलायन, मूर्च्छा, भौंचक्का होना, घिग्घी बँधना ।
संचारी—संभ्रम, आवेश, त्रास, दैन्य, चिंता, मृत्यु ।

लागि लागि आगि, भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं ।
छूटे बार, वसन उघारे, धूम-धुंध अंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि'-'बारि' बार-बारहीं ।

(७) वीभत्स

स्थायी भाव—जुगुप्सा या घृणा ।
आलंबन—घृणास्पद व्यक्ति या वस्तुएँ, शव ।
आश्रय—जिसमें घृणा भाव जगे ।
उद्दीपन—दुर्गंधमय माँस, रक्त, अस्थि आदि ।
अनुभाव—नाक सिकोड़ना, थूकना, मुँह फेरना, आँख मींचना ।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

संचारी—ग्लानि, आवेग, व्याधि, मूर्च्छा ।

(१) ओझरी की झोरी काँधे, आँतिनि की सेल्ही बाँधे,
मूंड़ के कमंडलु खपर किये कोरि कै ।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनी तापसी-सी,
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै ।
सोनित-सों सानि-सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै ।
'तुलसी' बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि-हेरि हँसत हैं, हाथ-हाथ जोरि कै ।

(२) सिर पै बैठो काग, आँखि दोऊ खात निकारत ।
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनंद उर धारत ।।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै माँस उचारत ।
स्वान आँगुरिन काटि-काटि कै खान विचारत ।।

(८) अद्भुत

स्थायी भाव—विस्मय या आश्चर्य ।

आलंबन—अलौकिक वस्तु, असाधारण व्यापार, विचित्र दृश्य ।

आश्रय—जिसमें आश्चर्य जगे ।

उद्दीपन—आश्चर्यजनक वस्तुओं का दर्शन, श्रवण या महिमा का वर्णन ।

अनुभाव—स्तंभित रह जाना, रोमांचित होना, दाँतों तले उँगली दबाना, गद्‌गद होना, आँसू आना ।

संचारी—वितर्क, भ्रांति, हर्ष, आवेग ।

सखी दीख कौतुक मग जाता ।
आगे राम सहित श्री भ्राता ।।
फिर चितवा पाछें प्रभु देखा ।
सहित बंधु सिय सुंदर वेषा ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥

(२) केसव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिन लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरे भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
वदनहीन सो ग्रसइ चराचर पान करन जे जाहीं ॥

(६) शांत

स्थायी भाव—शम या निर्वेद [वैराग्य]।

आलंबन—संसार की असारता का ज्ञान, परमात्मा का चिंतन।

आश्रय—विरक्त व्यक्ति।

उद्दीपन—ऋषियों के आश्रम, तीर्थ स्थान, शास्त्रों का अनुशीलन एवं श्रवण, सत्संग, रमणीक एकांत स्थान।

अनुभाव—अलौकिक प्रसन्नता, एकांतप्रियता, गद्गद होना, रोमांच, अश्रु-विसर्जन।

संचारी—हर्ष, निर्वेद, धृति, स्मरण।

(१) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं।
आँखिन सौं 'रसखान' कबौं ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं ॥

(२) मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु, करम, बचन अरु ही ते।
सुत, वनितादि जान स्वारथ रत, न करु नेह सब ही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर, तू न तजै अब ही ते ॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

दो नये रस

शास्त्रीय दृष्टि से नौ ही रस माने गए हैं; लेकिन कुछ विद्वानों ने तुलसी और सूर की रचनाओं के आधार पर दो नए रसों को मान्यता प्रदान की है। इनमें एक है भक्ति और दूसरा वात्सल्य। संतान के प्रति स्नेह वात्सल्य के अंतर्गत आता है। इसके दो अंग हैं—संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य। देवविषयक रति या राम, कृष्ण आदि के प्रति उज्ज्वल अनुराग को भक्ति के नाम से पुकारा जाता है।

दोनों के उदाहरण लीजिए।

वात्सल्य

(१) वर दंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै 'तुलसी' बलि जाऊँ लला इन बोलन की॥

(२) किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिंब पकरिबे धावत॥
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह को, कर सों पकरन चाहत।
किलकि हँसत, राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत॥
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि 'सूर' के प्रभु को दूध पियावति॥

भक्ति

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा, तू सब विधि हित मेरो॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

छंद

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

छंद

मात्रा और वर्ण आदि के विचार से होने वाली वाक्य-रचना को छंद कहते हैं। जैसे व्याकरण द्वारा गद्य का अनुशासन होता है, वैसे ही छंद द्वारा पद्य का। छंद का दूसरा नाम पिंगल भी है। इसका कारण यह है कि छंद-शास्त्र के आदि प्रणेता पिंगल नाम के ऋषि थे।

मात्रा और वर्ण के विचार से छंद के दो भेद होते हैं—(१) मात्रिक और (२) वर्णिक। जो छंद मात्रा की गणना के अनुसार चलते हैं उन्हें मात्रिक और जो वर्णों को आधार बनाकर चलते हैं, उन्हें वर्णिक कहते हैं।

(१) मात्रिक छंद

चौपाई

चौपाई के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ योगी॥

दोहा

दोहे के पहले और तीसरे चरण में १३ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार दोनों पंक्तियों में से प्रत्येक में २४ मात्राएँ होती हैं।

'रहिमन अँसुआ नयन ढरि,
जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते,
कस न भेद कहि देइ?

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

सोरठा

इसके विषम चरणों में ११ और सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं।

यह दोहे का उलटा होता है।

फूले फले न बेत,
यदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत,
जो गुरु मिलहिं विरंचि सम।

हरिगीतिका

इसमें २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु होता है।

कहते हुए यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गए।
हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गए पंकज नए॥

रोला

रोला के प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। ११ और १३ मात्राओं पर यति रहती है।

कहूँ दिखियत कहुँ नाहिं, वधू, बन बीच बनी यों।
बिजुरिन के से टूक, सघन वन माँझ चलत ज्यों॥

उल्लाला

इसके विषम चरण में १५ और सम में १३ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार यह २८ मात्राओं का एक छंद है।

हे शरणदायिनी देवि तू,
करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि संतान हम,
तू जननी तू प्राण है॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

छप्पय

रोला और उल्लाला के योग से छप्पय छंद बनता है। आदि में रोला के चार चरण और अन्त में उल्लाला होता है।

उल्लाला कहीं २६ मात्रा का होता है, कहीं २८ का। दोनों में से कोई भी लिया जा सकता है।

जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं।
परमहंस सम बाल्य काल में सब सुख पाए।
जिसके कारण धूल-भरे हीरे कहलाए।
हम खेले कूदे हर्ष युत, जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि तुझको निरख, मग्न क्यों न हों मोद में?

वीर

वीर छंद में १६।१५ की यति से प्रत्येक पंक्ति में ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु लघु का विधान है।

इसी का दूसरा नाम आल्हा छंद है।

१. खेतों के निकेत बनते हैं,
और निकेतों के फिर खेत।
वे प्रसाद रहें न रहें,
पर अमर तुम्हारा यह साकेत॥

—मैथिलीशरण गुप्त

२. हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।

—प्रसाद

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

३. धीरे-धीरे संशय से उठ,
बढ़, अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह से,
फैल लालसा-से निशि-भोर।

—पंत

सरसी

सरसी के प्रत्येक चरण में १६।११ के विराम से २७ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु लघु होते हैं।

निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि,
अखिल विस्मयाकार;
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर
भावों की आधार।

—पंत

कुंडलिया

दोहा और रोला के योग से कुंडलिया छंद बनता है। इसमें दो पंक्तियाँ दोहा की और चार रोला की रहती हैं प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं।

कोलाहल सुनि खगन के सरवर जनि अनुरागि।
ये सब स्वारथ के सखा दुरदिन दैहैं त्यागि॥
दुरदिन दैहैं त्यागि तोय तेरो जब जैहै।
दूरहिं ते तजि आस पास कोऊ नहिं ऐहै॥
बरनै 'दीनदयाल' तोहि मथि करि हैं काहल।
ये चल-छल के मूल भूल मत सुनि कोलाहल॥

[इस छंद में दोहे के कुछ शब्द रोला के प्रारम्भ में दुहराये जाते हैं और उसके प्रारम्भिक शब्द रोला के अंत में आते हैं। इस प्रकार दोहा और रोला एक दूसरे से बँधकर एक नवीन छंद की सृष्टि करते हैं।]

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

बरवै

बरवै के पहले-तीसरे चरण में १२ मात्राएं होती हैं, दूसरे-चौथे में ७। इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति में १६ मात्राएँ होती हैं।

१. प्रीति रीति कौ बिरवा, चले लगाइ।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय ।।

२. अवधि शिला का उर पर था गुरुमार।
तिल-तिल काट रही थी, दृगजल धार ।।

—मैथिलीशरण गुप्त

राधिका

राधिका छंद में २२ मात्राएँ होती हैं।

आनन्द हमारे ही अधीन रहता है।
फिर भी विषाद नर-लोक व्यर्थ सहता है ।।

[प्रसिद्ध लोक-छंद लावनी भी यही है।]

—मैथिलीशरण गुप्त

रूपमाला

रूपमाला में १४।१० के विराम से प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु होता है। प्रारम्भ में रगण (ऽ।ऽ) का होना आवश्यक-सा है।

१. वेणु वीन मृदंग बाजत, दुंदुमी बहु भेव।
भाँति-भाँतिन होत मंगल, देव से नर देव ।।

१. नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष।
गूढ़ अन्तर का छिपा रहता रहस्य विशेष ।।

—प्रसाद

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

सार

सार में १६।१२ पर यति देकर २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो गुरु होते हैं। इसका दूसरा नाम ललितपद भी है।

लज्जा की लाली फैली थी,
भौंहें तनिक चढ़ी थीं।
ग्रीवा नीची थी पर आँखें,
नृप की ओर बढ़ी थीं॥

—मैथिलीशरण गुप्त

पीयूषवर्ष

इसके प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ होती हैं।

१. जनकपुर की राज-कुंज-विहारिका।
एक सुकुमारी सलोनी सारिका॥
२. जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े।
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े॥

—मैथिलीशरण गुप्त

शृंगार

इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं।

न जाने कौन अये द्युतिमान;
जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख-दुख के सहचर मौन;
नहीं कह सकती तुम हो कौन ?

—सुमित्रानंदन पंत

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

गीतिका

इसमें २६ मात्राएँ होती हैं। १४।१२ पर यति। अन्त में लघु-गुरु का विधान है।

मातृ-भू-सी मातृ-भू है, अन्य से तुलना कहीं,
यत्न से भी ढूंढ़ने पर, मिल हमें सकती नहीं।

वर्णिक छंद

तीन अक्षरों के समूह को 'गण' कहते हैं। इनकी संख्या ८ है। गण में लघु और गुरु दोनों प्रकार के अक्षर रहते हैं। इन गणों की पहचान के लिए निम्नलिखित सूत्र प्रसिद्ध है—

।ऽऽऽ।ऽ।।।ऽ

यमाताराजभानसलगा।

इसमें प्रथम ८ अक्षर गणों के परिचायक हैं, अन्तिम दो लघु गुरु के।

इस सूत्र के अनुसार निम्नलिखित गणों का लघु-गुरु के हिसाब से यह रूप होगा।

यगण	। ऽ ऽ
मगण	ऽ ऽ ऽ
तगण	ऽ ऽ ।
रगण	ऽ । ऽ
जगण	। ऽ ।
भगण	ऽ । ।
नगण	। । ।
सगण	। । ऽ

द्रुतविलंबित

इसमें १ नगण, २ भगण, १ रगण होते हैं।

।।। ऽ ।।ऽ। ।ऽ। ऽ
दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥

मालिनी

इशमें २ नगण, १ मगण, २ यगण होते हैं।

।।।।।।ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ

१. जब विरह विधाता ने सृजा विश्व में था।
तब स्मृति रचने में कौन-सी चातुरी थी?

२. प्रिय स्वजन किसी के क्या न जाते कहीं हैं?
पर हृदय न जाने दग्ध क्यों हो रहा है?

मंदाक्रांता

इसमें १ मगण, १ भगण, १ नगण, २ तगण, और दो गुरु होते हैं।

ऽऽऽ ऽ।।। ।।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ

१. मैं नारी हूँ तरल उर हूँ प्यार से वंचिता हूँ।
जो होती हूँ विकल विमना व्यस्त वैचित्र्य क्या है।

२. संध्या फूली परम प्रिय की कांति सी है दिखाती।

वसंततिलका

इसमें १ तगण, १ भगण, २ जगण और २ गुरु होते हैं।

ऽऽ।ऽ।।। ऽ।।ऽ।ऽऽ

भू में रमी शरद की कमनीयता थी।
नीला अनंत नभ निर्मल हो गया था॥

शार्दूलविक्रीड़ित

इसमें १ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण और १ गुरु होते हैं।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

१, काले कुत्सित कीट का कमल में कोई नहीं काम था।

२. प्राणी है यह सोचता समझता मैं पूर्ण स्वाधीन हूँ।
इच्छा के अनुकूल कार्य सब मैं हूँ साध लेता सदा।
ज्ञाता हैं कहते मनुष्य वश में है काल कर्मादि के।
होती है घटना-प्रवाह-पतिता-स्वाधीनता यंत्रिता॥

वंशस्थ

वंशस्थ में १ जगण, १ तगण. १ जगण और १ रगण होता है।

१. प्रवाह होते तक शेष श्वास के।
सरक्त होते तक एक भी शिरा।
सशक्त होते तक एक लोम के।
किया करूँगा हित सर्वभूत का॥

२. निसर्ग ने सौरभ से पराग ने।
प्रदान की थी अति कांत भाव से।
वसुंधरा को पिक को मिलिंद को।
मनोज्ञता मादकता मदांधता॥

शिखरिणी

शिखरिणी में क्रमशः एक-एक यगण, मगण, नगण, सगण और भगण के उपरांत अंत में लघु गुरु होते हैं।

१. हिमांशू चंदा सौं कुसुम शर तो सौं कहत क्यों ?
नहीं साँचे दोऊ इन गुनन मो से जनन कौं।
खरी छोड़े ज्वाला किरन व पाला सँग मरी।
तूहू वज्राकारी निज सुमन के बानन करे॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

२. अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से।
बना जो देती थी बहु गुणमयी भू-विपिन को।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

निराले फूलों की विविध दल वाली अनुपमा ।
जड़ी-बूटी नाना बहु फलवती थी विलसती ॥

—हरिऔध

चंपकमाला

इसमें एक भगण, एक मगण, एक सगण और एक गुरु होता है ।

१. चाह नहीं तो वैभव फीका ।
खेल नहीं तो शैशव फीका ॥
२. भारत भू की पुण्य धरा है ।
गौरव से आकाश भरा है ।

भुजंगी

इसमें ३ यगण, १ लघु और एक गुरु होता है ।

१. नहीं लालसा है विभो वित्त की ।
हमें चाहिए चेतना चित्त की ॥
२. शुभे, धन्य झंकार है धाम में ।
रहे किन्तु टंकार संग्राम में ।
इसी हेतु है जन्म टंकार का ।
न टूटे कभी तार झंकार का ॥

—मैथिलीशरण गुप्त

तोटक

इसमें ४ सगण होते है ।

जितने गुण-सागर नागर हैं ।
कहते यह बात उजागर हैं ।
अब यद्यपि आरत गारत हैं ।
यह भारत के सम भारत है ॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

प्रतिमाक्षरा

इनमें १ सगण, १ जगण और २ सगण होते हैं।

अब भो समक्ष वह नाथ खड़े।
बढ़ किन्तु रिक्त यह हाथ पड़े।
न वियोग है न यह योग सखी।
कह कौन भाग्य-भय-भोग सखी ?

—मैथिलीशरण गुप्त

पंचचामर

इसमें १ जगण, १ रगण, १ जगण, १ रगण, १ जगण तथा अन्त में १ गुरु का प्रयोग होता है।

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर-पुत्र हो दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है--बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

—प्रसाद

प्रमाणिका

इसमें १ जगण, १ रगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं

१. नमामि भक्तवत्सलं।
कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदाम्बुजं।
अकामिना स्वधामदं ॥

—तुलसीदास

२. जमीन है न बोलती,
न आसमान बोलता।

—बच्चन

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

घनाक्षरी

घनाक्षरी चार चरणों की होती है। प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। अंतिम वर्ण गुरु होता है। इसी का नाम मनहरण छंद या कवित्त है। सामान्य रूप से १६।१५ पर विराम होता है।

जोगिन की भोगिन की विकल वियोगिन की,
जग में न जागती जमातैं रहि जायँगी।
कहै 'रतनाकर' न सुख के रहै जो दिन,
तो ये दुख द्वंद्व की न रातैं रहि जायँगी।
प्रेम-नेम छाँड़ि ज्ञान-क्षेम जो बतावत सो,
भीति ही नहीं तो कहाँ छातैं रहि जायँगी।
घातैं रहि जायँगी ना कान्ह की कृपा ते इती
ऊधौ कहिबे को बस बातैं रहि जायँगी।

रूप घनाक्षरी

रूप घनाक्षरी के चारों चरणों में ३२।३२ अक्षर होते हैं। १६।१६ पर विराम रहता है। अंत में गुरु लघु रहते हैं।

नगर से दूर कुछ गाँव की सी बस्ती एक,
हरे भरे खेतों के समीप अति अभिराम।
जहाँ पत्रजाल अंतराल से झलकते हैं,
लाल खपरैल श्वेत छज्जों के सँवारे धाम।
बीचों-बीच वट वृक्ष खड़ा है विशाल एक,
झूलते हैं बाल कभी जिसकी जटायें थाम।
चढ़ी मंजु मालती लता है जहाँ छाई हुई,
पत्थर की पट्टियों की चौकियाँ पड़ी हैं श्याम।

सवैया

सवैया में २२ में लेकर २६ वर्ण तक रहते हैं। इसमें आरम्भ से

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

लेकर अंत तक कोई एक गण दुहराया जाता है। अंत के शेष अक्षरों में लघु-गुरु आदि रहते हैं।

सवैया के अनेक प्रकार है। इनमें मदिरा, मत्तगयंद, (मालती), सुमुखी, मोतियदाम (मुक्तहरा) तथा दुर्मिल बहुत प्रसिद्ध हैं।

मदिरा

मंदिरा २२ अक्षर का सवैया है। इसमें सात भगण और अंत में गुरु होता है।

भासत गौरि गुसांइन को वर राम दुहू धनु खंड कियो।
मालिन को जयमाल गुहौ हरि के हिय जानकि मेलि दियो।
रावण की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जु लंक कियो।
राम वरी सिय मोद-भरी नभ में सुर जै जयकार कियो॥

मत्तगयंद या मालती

मत्तगयंद २३ अक्षरों का होता है। इसमें सात भगण और दो गुरु होते हैं।

१. या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिधि नवौ निधि को सुख नंद की धेनु चराइ बिसारौं।
'रसखान' कबौं इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं॥
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं॥

२. शीश पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसे केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानहुँ की नहि सामा।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकिसो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपुनो नाम सुदामा॥

३. सेस महेस गनेस सुरेस दिनेसहु जाहि निरंतर गावैं।
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

जाहि अनादि, अनंत, अखंड, अछेद, अभेद, सुवेद बतावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।

सुमुखी

सुमुखी में भी २३ अक्षर होते हैं। इसमें ७ जगण और अंत में एक लघु गुरु का विधान है।

कुमार के रंग-निवास की हैं अलबेली नवेली तहाँ रमनी।
लखै छवि सोवत में मुख की प्रति एक की ऐसी लुनाई सनी।
परै कहुँ जाहि पै दीठि जहाँ सोइ लागति सुंदरि ऐसी घनी।
यहै कहि आवति है मन में सबमें यह रत्न अमोल धनी।

मोतियदाम या मुक्ताहरा

यह २४ अक्षरों का होता है। इसमें आठ जगण होते हैं।
सिया रघुनंदन की उनहारि गयो यह बाल महा सुखदाय।

दुर्मिल

दुर्मिल में २४ अक्षर होते हैं। यह आठ सगण का होता है।

१. कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी' मन-मंदिर में बिहरैं।

२. सखि नील-नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा तरता तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी, चलता उनको धरता-धरता।
गड़ जायँ न कंटक भूतल के, कर डाल रहा डरता-डरता।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

अलंकार

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

अलंकार

आभूषित करने वाले पदार्थ को अलंकार कहते हैं। जैसे अलंकार धारण करने से शरीर की शोभा बढ़ जाती है, वैसे ही अलंकार के प्रयोग से काव्य में भी चमक उत्पन्न हो जाती है। अलंकार के साथ उसे धारण करने वाला भी सुन्दर होना चाहिये। यही दशा काव्य की है। यदि उसका भाव-पक्ष दुर्बल है, तो अलंकार के प्रयोग से कोई लाभ नहीं होगा। काव्य की आत्मा रस है। उसका अलंकार से युक्त होना आवश्यक नहीं है। बिना अलंकार के भी सुन्दर कविता हो सकती है। अलंकारों के प्रयोग में मात्रा का भी ध्यान रखना चाहिये। यदि कोई स्त्री कुरूप हो और इस पर उसे अलंकारों से लाद दिया जाय, तो वह और भी कुरूप प्रतीत होगी। इसी प्रकार यदि कविता भावहीन है तो वह अलंकारों के अत्यधिक प्रयोग से और भी भद्दी लगेगी। प्राचीनकाल में संस्कृत के अनेक आचार्यों ने अलंकारों को बहुत महत्त्व प्रदान किया। इनमें दंडी और वामन मुख्य हैं। दंडी के अनुसार अलंकार काव्य का शोभाकारक धर्म है और वामन ने तो यहाँ तक कह डाला है कि अलंकार ही सौन्दर्य है। हिंदी में केशवदास अलंकार के बड़े प्रेमी और पक्षपाती थे। उन्होंने कहा ही है—'भूषन बिन न बिराजहीं कविता वनिता मित्त' अर्थात् आभूषण या अलंकार के बिना न स्त्री सुन्दर लगती है और न कविता। इससे कम से कम यह निष्कर्ष निकलता है कि अलंकार काव्य को रमणीयता प्रदान करते हैं।

अलंकारों के दो मुख्य भेद हैं—शब्दालंकार और अर्थालङ्कार। जहाँ शब्द-सम्बन्धी चमत्कार पाया जाय, वहाँ शब्दालंकार और जहाँ अर्थ-संबंधी सौंदर्य हो, वहाँ अर्थालंकार होता है। इनके अतिरिक्त जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में किसी प्रकार की विशेषता प्रतीत हो, वहाँ उभयालंकार माना जाता है।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

शब्दालंकार

शब्दालंकार ७ प्रकार के होते हैं। इनमें अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा वक्रोक्ति मुख्य हैं।

अनुप्रास

जहाँ किसी पंक्ति के शब्दों में एक ही वर्ण एक से अधिक बार आता है, वहाँ अनुप्रास होता है। जैसे—

१. चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में।

२. पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।

अनुप्रास के पाँच भेद होते हैं—(१) छेकानुप्रास (२) वृत्त्यनुप्रास (३) लाटानुप्रास (४) श्रुत्यनुप्रास और (५) अन्त्यानुप्रास। इनमें निम्न लिखित तीन महत्त्वपूर्ण हैं।

छेकानुप्रास

जहाँ कोई वर्ण केवल दो बार आवे, वहाँ छेकानुप्रास होता है—

१. इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती।

२. वर दंत की पंगति कुंद कली।

वृत्त्यनुप्रास

जहाँ किसी वर्ण की आवृत्ति वृत्तियों के अनुसार हो वहाँ वृत्त्यनुप्रास होता है। वृत्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) कोमला (२) परुषा और (३) उपनागरिका।

जिस रचना में य। र। ल। व। स आदि कोमल अक्षरों की प्रधानता हो वहाँ कोमला, जहाँ ओज की व्यंजना करने वाले कठोर शब्द आवें जैसे ट वर्ग के वर्ण अथवा द्वित्व वर्ण वहाँ परुषा वृत्ति होती हैं।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

उपनागरिकावृत्ति में सानुनासिक वर्ण आते हैं। तीनों के उदाहरण लीजिए—

१. कूलनि में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगर्‌यो बसंत है।

२. चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
विकट कटक बिद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत।

३. रघुनंद आनंद कंद कोशल चंद दशरथ नंदनम्।

लाटानुप्रास

लाटानुप्रास में ऐसे शब्द या वाक्य दुबारा आते हैं, जिनका सामान्य अर्थ तो एक ही होता है; किंतु अन्वय करने से पूरी उक्ति का अर्थ बदल जाता है—

१. पूत सपूत तो क्यों धन संचिय ?
पूत कपूत तो क्यों धन संचिय ?

२. पराधीन जो जन, नही स्वर्ग, नरक ता हेतु।
पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु।

यमक

जहाँ कोई शब्द एक से अधिक बार आवे और प्रत्येक स्थान पर भिन्न-भिन्न अर्थ दे, वहाँ यमक अलंकार होता है। यमक का अर्थ ही होता है—दो।

१. जेते तुम तारे, तेते नभ में न तारे हैं।

२. कनक कनक तें सौ गुनो मादकता अधिकाइ।
वा खाये बौराइ नर, या पाये बौराइ॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

३. तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान।।

४. ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं, कंद मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते, वे तीन बेर खाती हैं।
भूखन सिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलाती ते, वे बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत, शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते, वे नगन जड़ाती हैं।

श्लेष

जहाँ किसी शब्द के एक से अधिक अर्थ निकलें, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

श्लेष का अर्थ होता है—चिपका हुआ। श्लिष्ट शब्द में एक से अधिक अर्थ चिपके रहते हैं।

१. जो 'रहीम' गति दीप की, कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो करै, **बढ़े** अँधेरो होय।

२. **सुबरन** को ढूँढ़त फिरत, कवि, व्यभिचारी चोर।

३. 'रहिमन' पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरैं, मोती, मानुष, चून।।

४. चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर?
को घटि, ये **वृषभानुजा**, वे **हलधर** के वीर।।

५. अजौं **तर्‌यौना** ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक बास **बेसरि** लह्यौ, बसि **मुकुतन** के संग।।

६. मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की **झाँईं** परै, **स्यामु** **हरित-दुति** होइ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

वक्रोक्ति

जहाँ बात किसी एक आशय से कही जाय और सुनने वाला उससे भिन्न दूसरा अर्थ लगा दे, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है—(क) श्लेष वक्रोक्ति और (ख) काकु वक्रोक्ति।

(क) जहाँ उक्ति की वक्रता का आधार श्लेष हो, वहाँ श्लेष वक्रोक्ति होती है। इसमें श्लेष के दो अर्थों में से वक्ता एक अर्थ ग्रहण करता है, श्रोता दूसरा।

१. को तुम हो ? इत आए कहाँ ?
'घनश्याम' हैं, तो कितहूँ बरसो।

एक बार कृष्ण राधा के यहाँ गये और उनका बंद द्वार खटखटाया। भीतर से आवाज आई : कौन हो तुम ? यहाँ क्यों आये हो ? अपना नाम बताते हुए कृष्ण ने कहा : मैं घनश्याम हूँ। घनश्याम का एक अर्थ श्याम घन या काले बादल भी होता है। राधा ने शरारत से कहा : यदि घनश्याम हो तो यहाँ तुम्हारा क्या काम है, कहीं जाकर बरसो।

(ख) जहाँ कहे हुए वाक्य का कंठ की ध्वनि के कारण दूसरा अर्थ निकले, वहाँ 'काकु वक्रोक्ति' होती है।

१. मैं सुकुमारि, नाथ बन जोगू।
तुमहिं उचित तप, मो कहँ भोगू॥

२. राम लखन सिय कहँ बन दीन्हा।
पठै अमरपुर पति हित कीन्हा॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

अर्थालंकार

शब्दालंकार में किसी शब्द को हटाकर यदि उसका पर्याय रख दिया जाय, तो उस शब्द का सौंदर्य नष्ट हो जाता है; अतः ऐसे अलंकारों की खोज हुई, जिनका चमत्कार शब्द पर निर्भर न करे, वरन् उसके न रहने पर भी बना रहे। आशय यह कि रमणीयता शब्द में नहीं, अर्थ में निहित रहे। ऐसे अर्थालंकारों की कोई संख्या नियत नहीं की जा सकती। फिर भी उनमें जो प्रमुख हैं, उनकी चर्चा की जा रही है।

उपमा

जहाँ एक वस्तु की समता दूसरी वस्तु से की जाय, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

'उप' का अर्थ होता है समीप, 'मा' का मापना या तोलना। अतः उपमा का अर्थ है, दो वस्तुओं को एक दूसरे के समीप रख कर तोलना।

राधा रति के समान सुंदरी हैं।

(क) वस्तुओं की समता तीन कारणों से की जाती है—(१) आकार (२) रंग और (३) गुण।

(ख) उपमा के चार अंग होते हैं—

(१) जिसकी तुलना की जाती है, उसे 'उपमेय' कहते हैं; जैसे यहाँ राधा।

(२) जिससे तुलना की जाती है, उसे 'उपमान' कहते हैं; जैसे यहाँ

(३) जिस विशेषता की समानता के कारण तुलना की जाती है, उसे 'साधारण धर्म' कहते हैं; जैसे ऊपर के उदाहरण में सुन्दरता।

(४) जिस शब्द के द्वारा यह तुलना प्रकट होती है, उसे 'वाचक'

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

कहते हैं जैसे यहाँ समान। सा, सी, से, समान, सदृश, सम, सरिस, इमि, जिमि, ज्यों, जैसे आदि वाचक हैं।

(ग) जब उपमा के चारों अंग उपस्थित रहते हैं, तब 'पूर्णोपमा' होती है। जब इनमें से किसी एक की कमी रहती है तब 'लुप्तोपमा' कहलाता है। ऐसी उपमाएँ उपमेय लुप्तोपमा, धर्म लुप्तोपमा, वाचक लुप्तोपमा कही जाती हैं।

उपमान लुप्तोपमा की कल्पना करना अनुचित है; क्योंकि जहाँ उपमान नहीं होगा, वहाँ उपमा भी नहीं होगी।

पूर्णोपमा

१. नील गगन सा शांत हृदय था हो रहा।
२. मैं समझ्यो निरधार, यह जग काँचौ काँच सो।

लुप्तोपमा के उदाहरण—

(क) उपमेय लुप्तोपमा—
(१) भोगी कुसुमायुध योगी सा बना दृष्टिगत होता है।
(२) कमल के समान सुन्दर।
(ख) धर्म लुप्तोपमा—
कुंद इंदु सम देह !
(ग) वाचक लुप्तोपमा
तरुण अरुण वारिज नयन।

मालोपमा—साधारणत: किसी की तुलना एक ही उपमान से की जाती है; लेकिन जहाँ किसी उपमेय के लिए बहुत से उपमान लाए जाएँ और वहाँ उनकी एक माला-सी तैयार हो जाय, वहाँ मालोपमा होती है—

१. हिरनी से, मीन से, सुखंजन समान चारु,
अमल कमल से, विलोचन तिहारे हैं।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

२. इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर,
रावण सदंभ पर रघुकुलराज हैं।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर राम-द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृग-झुंड पर,
'भूषण' वितुंड पर, जैसे मृगराज हैं।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ-बंस पर, सेर सिवराज हैं।

रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान के रूप में दिखाया जाय, वहाँ रूपक अलंकार होता है जैसे मुख-चंद्र। आशय है—मुख ही चंद्रमा है।

रूपक के तीन भेद होते हैं—(१) निरंग (२) सांग और (३) परम्परित।

(१) निरंग में केवल उपमेय और उपमान का अभेद रहता है।

हैं शत्रु भी यों मग्न जिसके शौर्य-पारावार में।

(२) जहाँ उपमेय में उपमान के अंगों का भी आरोप हो, वहाँ साँग रूपक होता है।

(क) उदिय उदय गिरि-मंच पर, रघुवर-बाल पतंग।
विकसे संत-सरोजवन, हरखे लोचन भृंग॥

(ख) अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी।
मानहुँ रोष-तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप-पहार प्रगट भइ सोई।
भरी क्रोध-जल जाइ न जोई॥
दोउ वर कूल, कठिन हठ धारा।
भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला।
चली विपति-बारिधि अनुकूला॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

(३) परंपरित रूपक में एक रूपक के द्वारा दूसरे रूपक की पुष्टि होती है।

(क) इकटक सब चितवहिं तेहि ओरा।
रामचंद्र मुख - चंद्र - चकोरा ।।

(ख) राम - कथा कलि-पन्नग-भरनी।

प्रतीप

जहाँ उपमान को उपमेय के समान कहा जाय अथवा उपमेय को उपमान से श्रेष्ठ बताया जाय।

(१) संध्या फूली परम प्रिय की कांति सी है दिखाती।

(२) इन दशनों अधरों के आगे क्या मुक्ता है, विद्रुम क्या ?

[पहली स्थिति में प्रतीप उपमा का उलटा होता है। प्रतीप का अर्थ ही होता है विरुद्ध या उलटा। यदि कहा जाय—मुख चंद्रमा के समान है, तो हुई उपमा। इसके स्थान पर यदि लिखा हो—चंद्रमा उसके मुख के समान है, तो प्रतीप होगा। ऊपर लालिमा से युक्त संध्या की तुलना कृष्ण के मुख की कांति से की गयी है]

उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

मानो, मानहु, मनहु, मन जानो जानहु, जनु, निश्चय, मेरे जान, इव आदि उत्प्रेक्षा के वाचक शब्द हैं।

(क) चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत युग मीन ।।

(ख) सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनौ नीलमनि सैल पर, आतप पर्‌यौ प्रभात ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

(ग) अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी ।
मानहुँ रोष - तरंगिनि बाढ़ी ।

उत्प्रेक्षा तीन प्रकार की होती है —(१) वस्तूत्प्रेक्षा (२) हेतूत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा ।

(१) जहाँ एक वस्तु में दूसरी वस्तु के आरोप की संभावना की जाय, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा होती है—

जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े ।
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े ।।
पद्मरागों से अधर मानो बने ।
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने ।।

(२) जहाँ संभावना के मूल में कोई कारण या हेतु हो, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है—

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास ।

(३) जहाँ किसी क्रिया के मूल में किसी फल की संभावना हो, वहाँ फलोत्प्रेक्षा होती है—

नित्य ही नहाता क्षीर सिंधु में कलाधर हैं,
सुन्दरि, तवानन की समता की इच्छा से ।

व्यतिरेक

जहाँ उपमेय को उपमान से श्रेष्ठ बताया जाय और उसका कारण भी दिया जाय, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है ।

जनम सिंधु, पुनि बंधु बिष, दिन मलीन, सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

असंगति

जहाँ कारण कहीं हो और उसका कार्य कहीं, वहाँ असंगति अलंकार होता है।

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥

निदर्शना

जब उपमेय और उपमान के से दो वाक्यों में अर्थ की भिन्नता होते हुए भी, एक दूसरे का सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित किया जाय कि उनमें समानता जान पड़ने लगे, तब निदर्शना अलंकार होता है।

यह प्रेम को पंथ करार महा,
तरवार की धार पै धावनो है।

विभावना

जहाँ बिना कारण के ही कार्य हो जाय, वहाँ विभावना अलंकार होता है।

बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी बकता, बड़ योगी ॥

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी वस्तु का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाय अथवा सीमा के बाहर की बात कही जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

१. देख लो साकेत नगरी है यही।
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही ॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

अत्युक्ति

जहाँ किसी वस्तु का बढ़ा-चढ़ाकर किया गया वर्णन झूठा प्रतीत हो, वहाँ अत्युक्ति अलंकार होता है।

१. जासु त्रास डर कहँ डर होई।

२. भूषन भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पायँ न धर परत, सोभा के भार॥

३. गोपिन के अँसुआन के नीर, पनारे भये बहि के पुनि नारे।
नारे भये नदिया बहिके, नदिया नद ह्वै गये काटि करारे।
वेगि चलो तो चलौ उत कौं, कवि 'तोष' कहै बृजराजदुलारे।
ते नद चाहत सिंधु भये और सिंधु ते ह्वै हैं जलाहल सारे॥

[अतिशयोक्ति और अत्युक्ति मिलते-जुलते अलंकार हैं। भेद यह है कि उक्ति यदि संभव हो तो अतिशयोक्ति और असंभव हो तो अत्युक्ति होगी।]

अपह्नुति

जहाँ सत्य बात का निषेध कर मिथ्या वस्तु का आरोप किया जाय, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।

बंधु न होय, मोर यह काला।

अन्योक्ति

जहाँ किसी की बात किसी और पर ढाल कर कही जाय, वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है।

१. नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

२. स्वारथ सुकृत न, श्रम बृथा, देखु विहंग विचार।
बाज, पराये पानि पर, तू पच्छीनु न मार॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

दृष्टांत

जहाँ पहले कोई बात कह कर, उससे मिलती-जुलती बात द्वारा दृष्टांत दिया जाय; लेकिन समानता किसी शब्द द्वारा प्रकट न हो, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है।

'रहिमन' अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकार्‌यौ गेह ते कस न भेद कहि देइ॥

उदाहरण

जहाँ किसी बात के समर्थन में उदाहरण किसी वाचक शब्द के साथ दिया जाय, वहाँ उदाहरण अलंकार होता है।

१. बूँद अघात सहैं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥
२. छुद्र नदी भरि चलि उतराई।
जस थोरेहुँ धन खल बौराई॥
३. ससि सम्पन्न सोह महि कैसी।
उपकारी के संपति जैसी॥

यथासंख्य या क्रम

जब कुछ पदार्थों का उल्लेख करके उसी क्रम से उससे संबंधित पदार्थों, कार्यों या गुणों का वर्णन हों, तो यथासंक्य या क्रम अलंकार होता है।

१. अमिय, हलाहल, मदभरे, श्वेत, श्याम रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥
२. उषा-ज्योत्स्ना-सा यौवन-स्मित,
मधुप सदृश निश्चित विहार,

—प्रसाद

३. चातक हंस सराहियत टेक विवेक विभूति।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

उल्लेख

जब किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय, तब उल्लेख अलंकार होता है।

१. तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में,
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में,
तू ज्ञान हिंदुओं में, ईमान मुस्लिमों में,
तू प्रेम क्रिश्चियन में, है सत्य तू सुजन में,

—रामनरेश त्रिपाठी

२. जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ।।
देखहिं भूप महा रनधीरा ।
मनहुँ वीर रस धरे शरीरा ।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी ।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ।।
पुरवासिन देखे दोउ भाई ।
नरभूषन लोचन सुखदाई ।।

परिकर

जब विशेष्य के साथ किसी विशेषण का साभिप्राय प्रयोग हो, तब परिकर अलंकार होता है।

देहु उतर अबु कहहु कि नाहीं ।
सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं ।।

परिकरांकुर

जहाँ विशेष्य का प्रयोग अभिप्राय-सहित हो, वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

१. सुनहु विनय मम विटप अशोका।
सत्य नाम करु, हर मम शोका ।।

२. परकाज देह को धारै फिरौ 'परजन्य' जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबही विधि सज्जनता सरसौ।
'घनआनंद' 'जीवनदायक' हौ, कबौ मेरिऔ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुआन को लै बरसौ ।।

सहोक्ति

जहाँ 'सह' 'संग' आदि शब्दों की सहायता से बहुत-सी बातों का कथन एक साथ किया जाय।

जस, प्रताप, बीरता, बड़ाई,
नाक, पिनाकहिं संग सिधाई।

विनोक्ति

जहाँ 'बिना', 'रहित' आदि शब्दों की सहायता से एक के बिना दूसरा पदार्थ शोभित अथवा अशोभित कहा जाय, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है।

जिय बिनु देह, नदी बिनु वारी।
तैसेहि नाथ, पुरुष बिनु नारी ।।

कारणमाला

जहाँ एक कारण से उत्पन्न कार्य किसी अन्य कार्य का कारण हो और इस प्रकार वस्तुओं का वर्णन एक श्रृंखला में किया जाय, वहाँ कारण-माला अलंकार होता है।

आकर्षण से प्रेम, प्रेम से मोह उपजता भारी।
स्नेह-रज्जु में बँध जाते हम, बन जाते संसारी ।।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

संदेह

जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय बना रहे, निश्चय न हो वहाँ संदेह अलंकार होता है।

१. सारी बीच नारी है, कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है, कि नारी ही की सारी है ?

२. तुम हो अखिल विश्व में,
या यह अखिल विश्व है तुम में,
अथवा अखिल विश्व तुम एक ?

—निराला

३. कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है
कि श्याम घम-मंडल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है
कि राहु के कबंध पै कराल केतु तारा है।
'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है
कि तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग हैं
कि ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है।

भ्रांतिमान [भ्रम]

जहाँ समता के कारण किसी वस्तु में अन्य वस्तु का भ्रम हो जाय।

नाक का मोती अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रांति से,
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है।

—मैथिलीशरण गुप्त

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

काव्यलिङ्ग

जहाँ किसी उक्ति के समर्थन का कारण बताया जाय, वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है।

१. कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाइ।
वा खाये बौरात नर, या पाये बौराइ॥

२. श्री पुर में, बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहु मुदरी, अब तियन की को करिहै परतीति॥

स्वभावोक्ति

किसी के स्वभाव, धर्म, कर्म और दशा का यथावत् अथवा स्वाभाविक वर्णन करना स्वभावोक्ति अलंकार के अंतर्गत आता है।

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि जात किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ॥

समासोक्ति

जहाँ प्रस्तुत से अप्रस्तुत का भी बोध हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।

(१) कुमुदिनिहु प्रमुदित भई साँझ कलानिधि जोय।

(२) सो दिल्ली अस निबहुर देसू।
कोइ न बहुरा कहै सँदेसू॥
जो गवनै सो तहाँ कर होई।
जो आवै कछु जानि न सोई॥

[जो आँखों के सामने हो उसे प्रस्तुत और छिपा, दूर या अप्रत्यक्ष हो उसे अप्रस्तुत कहते हैं। पहली पंक्ति का अर्थ तो इतना ही है कि संध्या समय कुमुदिनी चंद्रमा को देखकर खिल उठी। लेकिन यहाँ उस नायिका से भी तात्पर्य है जो संध्या समय अपने प्रेमी की दूर पर झलक पाकर प्रसन्न हो उठी है। दूसरा उद्धरण जायसी से लिया गया है। रत्न-

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

सेन दिल्ली में अलाउद्दीन की कैद में है। उसका संदेश लाकर कोई नहीं देता। इन पंक्तियों का एक आध्यात्मिक अर्थ भी है। दिल्ली से तात्पर्य है परलोक का। जो परलोक का वासी हुआ, उसका संदेश मिलना संभव नहीं है।]

अप्रस्तुत प्रशंसा

जब अप्रस्तुत का वर्णन इस ढंग से किया जाय कि प्रस्तुत का ज्ञान हो, तब अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है।

१. मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीप किसोर।

२. अब इस समय तुम निज जनों को एक बार निहार लो।

३. करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मतिमंद तू, इतर दिखावत काहि ?

स्मरण

पहले से देखी हुई वस्तु अथवा सुनी हुई बात से मिलती-जुलती वस्तु या बात को देख या सुनकर जब पूर्व वस्तु या बात का स्मरण हो आता है, तब स्मरण अलंकार होता है।

१. प्राची दिशि ससि उगेउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।।

२. जब-जब वै सुधि कीजिए, तब तब सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाहिं।।

३. सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर।।

व्याज स्तुति

जहाँ देखने या सुनने में तो निंदा-सी प्रतीत हो, पर वास्तव में हो प्रशंसा, वहाँ व्याज स्तुति अलंकार होता है।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

काशी पुरी की कुरीति महा,
जहाँ देह देए, पुनि देह न पाइए ।

व्याज निंदा

जहाँ की तो जाय स्तुति, पर वास्तव में निंदा हो, वहाँ व्याज निंदा अलंकार होता है ।

१. राम साधु, तुम साधु सुजाना ।

२. नाक कान बिनु भगिनि निहारी ।
क्षमा कीन्ह तुम धरम बिचारी ॥

विरोधाभास

जब दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाय, तब विरोधाभास अलंकार होता हैं ।

(१) सुलगी अनुराग की आग वहाँ,
जल से भरपूर तड़ाग जहाँ ।

(२) या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय ।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम-रँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥

दीपक

जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का एक धर्म कहा जाय, वहाँ दीपक अलंकार होता है ।

संग ते जती, कुमंत्र ते राजा,
मान ते ज्ञान, पान ते लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु, मद ते गुनी,
नासहिं बेगि, नीति अस सुनी ॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

परिसंख्या

जब किसी वस्तु को अन्य स्थलों से हटाकर किसी एक ही स्थान पर स्थापित किया जाय, तब परिसंख्या अलंकार होता है।

पावस ही में धनुष अब, सरित तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग, नौ रस ही में वीर।
—वियोगी हरि ।।

अर्थान्तरन्यास

जहाँ किसी सामान्य बात का विशेष बात से तथा विशेष बात का सामान्य बात से समर्थन किया जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

१. टेढ़ि जानि शंका सब काहू।
वक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू ।।
२. सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ।।
३. जो 'रहीम' उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ।।

तुल्ययोगिता

जहाँ अनेक उपमेयों अथवा उपमानों का एक ही धर्म कथन किया जाय, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

१. यहै कहत श्रुति, स्मृति हू, यही सयाने लोग।
तीन दबावत निसँक ही, पातक, राजा, रोग ।।
२. कलिंदजा के सुप्रवाह की छटा,
विहंग-क्रीड़ा, कल नाद माधुरी,
इन्हें बनाती न अतीव मुग्ध थी,
अनूपता कुंज लता वितान की।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

विशेषोक्ति

जहाँ कारण के होने पर भी कार्य न हो, वहाँ विशेषोक्ति होती है।

पानी बिच मीन मीन पियासी।
मोहि सुनि-मुनि आवै हाँसी॥

संकर

जब किसी पद्य में कई अलंकार दूध-पानी की तरह मिले हुए हों, तब संकर अलंकार होता है। इन अलंकारों को पृथक् करना कठिन होता है।

वंदहूँ गुरु पद-पद्म-परागा।
सुरुचि-सुवास सरस-अनुरागा॥

संसृष्टि

जब किसी पद्य में कई अलंकार तिल-चावल की तरह मिले हों, तब संसृष्टि अलंकार होता है। इन अलंकारों को पृथक् किया जा सकता है।

दीरथ साँस न लेहि दुख-सुख साँईहि न भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल॥

प्रतिवस्तुउपमा

जब उपमेय और उपमान संबंधी अलग-अलग वाक्यों में भिन्न-भिन्न शब्दों से एक ही अर्थ ध्वनित हो, तब प्रतिवस्तुउपमा अलंकार होता है।

तिनहि सुहाय न नगर बधावा।
चोरहिं चाँदनि रात न भावा॥

मीलित

जब दो समान गुण वाली वस्तुएँ ऐसी मिल जायँ कि दोनों का भेद लक्षित न हो, तब मीलित अलंकार होता है।

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

कजरारी अँखियान में कजरा री, न लखाय ।

उन्मीलित

जब दो समान गुण वाली वस्तुओं का एक दूसरे में मिलने पर भी किसी कारण से भेद लक्षित हो जाय, तब उन्मीलित अलंकार होता है ।

चंपक हरवा गर मिलि अधिक सुहाय ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाय ॥

तद्गुण

जब कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर अपने पास की किसी दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है, तब तद्गुण अलंकार होता है ।

(१) केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
(२) अधर धरत हरि के परत ,
ओठ, दीठि, पट ज्योति ।
हरित बाँस की बाँसुरी,
इंद्रधनुष - रँग होति ॥

पूर्व रूप

जब कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के संसर्ग में आकर अपना गुण छोड़ दे; परन्तु किसी तीसरी के सम्पर्क में आकर अपना पहला रूप धारण कर ले, तब पूर्व रूप अलंकार होता है ।

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत ॥

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri

Delhi Books Collection Digitized By eGangotri